ARYAVART SHODH VIKASH PATRIKA
RNI TITLED NO. UPBBIL04292
RNI REG. NO. UPBBIL/2014/66218
PP. NO. 79-80
ISSN NO.-2347-2944
Vol.-7, No.-I, Issues-VIII YEAR- June-2017

अज्ञेय की काव्य–साधना

मंजूषा मिश्रा
एसो. प्रोफेसर, हिन्दी, का.सु साकेत स्नातकोत्तर महाविद्यालय, अयोध्या–फैजाबाद (उ0प्र0) भारत

अर्थ हमारा, जितना है सागर में नहीं
हमारी मछली में है सभी दिशाओं में सागर जिसको घेर रहा है।

अज्ञेय की कविता का अर्थ शायद इस मछली में ही है जिसे सभी दिशाओं में सागर घेर रहा है। यह 'मछली' अज्ञे की कविता का प्रिय प्रतीक है। 'मछली' अर्थात् अस्तित्व। मछली अर्थात् जिजीविषा। जल के बाहर निकाल ली गयी मछ तड़पती, छटपटाती, ऐंठती और हाँफती। क्या चाहती है वह? जीना, मुक्ति। यह मुक्ति औजीने की लालसा या कहें स्वातंत्र्य की खोज ही अज्ञेय के काव्य की सही जमीन है। अज्ञेय के पूरे कृतित्व में 'मुक्ति' शब्द का प्रयोग बहुत हुआ है। यह श कवि–मन की मुक्ति लालसा को व्यक्त करता है। क्योंकि स्वातन्त्र्य में ही व्यक्तित्व की सार्थकता भी सिद्ध होती है। अ अज्ञेय के व्यक्तित्व की खोज का अर्थ भी स्वातन्त्र्य की ही खोज है। अज्ञेय की कविता काव्य–यात्रा इसी मुक्ति के लिए है–

अपनी हर साँस के साथ
पनपते इस विश्वास के साथ
कि हर दूसरे की हर साँस को
हम दिला सकेंगे और अधिक सहजता
अनाकुल, उन्मुक्ति और गहरा उल्लास।

अज्ञेय का पुराना प्रतीक है 'हारिल'। यह भी अस्तित्व का ही प्रतीक है जिसमें उड़ने की आकुलता है और जि दसों दिशाओं में आकाश घेर रहा है– काँप न यद्यपि दसों दिशा में
तुझे शून्य नभ घेर रहा है।

मछली को सभी दिशाओं में सागर घेरता है और हारिल को 'शून्य–नभ'। यह 'सागर' और 'शून्यनभ' अस्तित्व क इकाई को घेरता हुआ समाज है या फिर सामाजिक नैतिक वर्जना। इस वर्जना के विरोध में ही अज्ञेय की कविता जन्मती औ खड़ी होती है– 'खोल दो सब बन्धनों के दुर्ग के ये रुद्ध सिंहद्वार।

अज्ञेय के प्रकृति प्रेम और क्षणवाद के मूल में भी इसी वर्जना से मुक्ति का प्रयास है। अज्ञेय की रचनाओं में शुरू से अब तक प्रकृति के प्रति सहज आकर्षण और उसके जीवन्त चित्र प्राप्त होते हैं– हरीघास, सागरतट, रेत, पत्ती, चिड़िया, कली, पपीहा, ललाती साँझ, चदरीली चाँदनी, काजल पुती रात, पूनों, इन्द्रधनुष, छाया, पगडण्डी, लहर, झील, बदली, क्वार की बयार आदि।

प्रकृति के प्रति अज्ञेय का लगाव रहस्यवादी लगाव नहीं है। यह लगाव मुक्त प्रकृति के साहचर्य में प्राप्त होने वाले ऐन्द्रिक सुख के कारण है। अज्ञेय प्रकृति की ओर इसलिए आकर्षित होते हैं कि वे प्रकृति के बीच मुक्त जीवन का सुख–वन्य सुख प्राप्त करना चाहते हैं। आदिम जीवन की गन्ध कवि–मन को आकर्षित करती है। यह नागर जीवन की भीड़ संस्कृति, कुण्ठा, यान्त्रिक दबाव और वणिकवृत्ति से अपनी निजता को समेट कर दूर भागने का प्रयास है। 'हरीघास पर क्षण भर' शीर्षक कविता में अज्ञेय कहते हैं–

आओ बैठो
तनिक और सटकर कि हमारे बीच स्नेह भर का, व्यवधान रहे, बस
नहीं दरारें सभ्य शिष्टजीवन की।[1]

इसी तरह नगर–सभ्यता पर व्यंग्य करते हुए 'साँप' शीर्षक कविता में अज्ञेय लिखते हैं–

साँप
तुम सभ्य तो हुए नहीं
नगर में बसना भी तुम्हें नहीं आया।
एक बात पूछूँ (उत्तर दोगे?)
तब कैसे सीखा हँसना
विष कहाँ पाया?[2]

क्षण के प्रति जो आग्रह अज्ञेय में प्राप्त होता है वह जीने का ही आग्रह है– जिजीविषा है, क्षणवाद का कोई स्वतन्त्र दर्शन अज्ञेय में नहीं है। क्षण का आग्रह मात्र इसलिए है कि इस कुण्ठित सभ्यता के बीच क्षणभर की छूट माँग लेना या ले लेना चाहता है– एक क्षण भर और
रहने दो मुझे अभिभूत।[3]

इस आग्रह के पीछे वर्तमान को भोजने की तीव्र लालसा है। अज्ञेय के ही शब्दों में "क्षण का आग्रह क्षणिकता का आग्रह नहीं है, अनुभूति की प्राथमिकता का आग्रह है।" अज्ञेय के लिए अनुभूति का क्षण, सर्जना का क्षण, प्यार का क्षण, समर्पण का क्षण ही सत्य है, क्योंकि उसी में वे जीवित हैं–

ASVS Society Reg. No. 561/2013-14

साँस का पुतला हूँ मैं
जरा से बँधा हूँ और
भरण को दे दिया गया हूँ
पर एक जो प्यार है न, उसी के द्वारा
जीवनमुक्त मैं किया गया हूँ।

अज्ञेय का जीवनमुक्ति मुख्यतः रूढ़ सामाजिक नैतिकता से मुक्ति का ही बोधक है। भूमि के कम्पित उरोजों पर मेघों का झुकना, लाल गुलाब की तपती, पियासी पंखुड़ियों के होंठ, हरियाली का बादलों के चुम्बनों से खिल उठना, कली का शरद की धूप में नहाकर निखर उठना, मन्दिर के भग्नावशेष पर चंचु क्रीड़ा करते दो वन पारावत, नदी की जाँघ पर सोया अँधियारा और डाह भरी चोर–पैरों से उझककर झाँकती–चाँदनी, छातियों के बीच घर की तलाश आदि अज्ञेय के काव्य में प्रयुक्त यह शब्दावली यौन–वर्जनाओं के विरुद्ध यौन–मुक्ति की ही शब्दावली है। 'तारसप्तक' के अपने वक्तत्व में उन्होंने स्वयं स्वीकार किया है– ''आधुनिक युग का साधारण व्यक्ति यौन–वर्जनाओं का पुंज है।'' अज्ञेय के काव्य में जो एक दर्द और आत्मपीड़न का स्वर मिलता है। उसका सम्बन्ध भी इन्हीं यौन–वर्जनाओं से है।[6]

'हारिल' और 'मछली' के समान अज्ञेय के काव्य के अन्य प्रिय प्रतीक हैं : 'सागर', 'हरी घास और धूप'। ये प्रतीक ही अज्ञेय के काव्य–दुर्ग की कुंजी है और इन सबका सम्बन्ध मन के एक ही कोने से है– धूप, स्वच्छता, खुलापन और उस गरमाहट का प्रतीक है जो आलिंगन में प्राप्त होता है। 'हरीघास' कवि के ही शब्दों में, 'अधुनातन मानव–मन की भावना की तरह। सदा बिछी है–हरी, न्यौतती।'' यह सहजता और मुक्ति का प्रतीक है।

अज्ञेय साम्यवादी दर्शन को पंगु मानते हैं तथा लोकतन्त्र को अधूरा मानते हुए भी उसे साम्यवाद की तुलना में श्रेष्ठ स्वीकार करते हैं– ''किसी भी एक व्यक्ति को इतना प्यार नहीं करना चाहिए कि जीवन में किसी दूसरे उद्देश्य की गुंजाइश न रह जाय– कि जीवन एक स्वतन्त्र इकाई है ओर यदि वह बिल्कुल पराधीन हो जाय तो यह कला नहीं है क्योंकि कला के आदर्श से उतरकर है।'' वे अपने प्रति दायित्व को प्राथमिक मानते हैं और समाज के प्रति दायित्व को उसी से उत्पन्न। उन्हीं के शब्दों में– ''समता उसी समाज में होती है जो स्वतन्त्र है और समाज वही स्वतन्त्र होता है जिसका अंग व्यक्ति स्वतन्त्र हो और अपने स्वातन्त्र्य के उपभोग के लिए सामाजिकता का वरण करता हो–

अच्छी कुण्ठा रहित इकाई
साँचे ढले समाज से
अच्छा अपना ठाठ फकीरी
मंगनी के सुख–साज से।

अज्ञेय का कहना है– ''मुझमें साधारण होकर जीने का कोई आग्रह नहीं है केवल सहज होना चाहता हूँ।''[7] पर इस स्वीकृति के बावजूद अज्ञेय की कविता में एक विशिष्टता की मुद्रा प्राप्त होती है, सहजता की नहीं। उनकी शालीनता में आत्म गौरव झलकता रहता है। अज्ञेय का आत्मदान अहं ओर समर्पण के बीच का आत्मदान है। अहंवादी व्यक्तित्व किसी अन्य स्वतन्त्र व्यक्तित्व को स्वीकार नहीं करता है। पर अज्ञेय इस आत्मदान में 'पर' के माध्यम से निज की ही खोज करते हैं। उन्हीं के शब्दों में– ''समर्पण है तो वह न बाँधता है, न अपने को बद्ध अनुभव करता है। केवल एक व्यापक कृतज्ञता मन में भर जाती है कि तुम हो, कि मैं हूँ।''[8] भाषा के प्रति जितने सचेत अज्ञेय हैं, उतना कोई ही कवि होगा। वे शब्द के सार्थक प्रयोग को अपने–आपमें एक सिद्धि मानते हैं। वे शुरू से ही यह महसूस करते रहे हैं कि शब्दों को सही और नया अर्थ प्रदान करने की में ही रचना की सबसे बड़ी शक्ति निहित है। ये उपमान मैले हो गये हैं। कहकर अज्ञेय ने इसी विचार को व्यक्त किया है। कहना न होगा कि उन्होंने अपनी कविताओं में नये बिम्बों और प्रतीकों की तो सृष्टि की ही है, पुराने बिम्बों और प्रतीकों को भी अपने अनुभव का नया अर्थ दिया है। इस सम्बन्ध में उनका क्थन है– ''कोई भी स्वस्थ काव्य साहित्य–प्रतीकों की, नये प्रतीकों की सृष्टि करता है और जब वैसा करना बन्द कर देता है तब जड़ हो जाता है।'' चिन्तन के एक छोर पर उन्हें एक सार्थक मौन अच्छा लगता है– मौन भी अभिव्यंजना है, जितना तुम्हारा सच है, उतना ही कहो।[9]

सन्दर्भ ग्रंथ सूची

1. अज्ञेय, सागरमुद्रा
2. अज्ञेय, आँगन के पार द्वार
3. अज्ञेय, हरी घास पर क्षण भर
4. अज्ञेय, साँप
5. अज्ञेय, हरी घास पर क्षण भर
6. तार सप्तक
7. अज्ञेय, शेखर एक जीवनी, भाग–एक
8. वही, भाग–दो
9. अज्ञेय, सदानीरा, भाग–एक

*****

ASVS Society Reg. No. 561/2013-14